International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 14 Issue 5, September-October, 2026

श्रीमद्भगवद्गीता की दृष्टि से रामानुजीय भक्तिदर्शन: एक दार्शनिक अनुशीलन

रंजीत तिवारी[1], डॉ. मुरलीधर मणि त्रिपाठी[2]

[1]संस्कृत विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार,
[2]वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, डी. ए. वी .पी. जी .कॉलेज, सिवान

DOI: https://doi.org/10.55948/IJERED.2026.0941

भारतीय दार्शनिक परम्परा में श्रीमद्भगवद्गीता का विशिष्ट स्थान है। यह ग्रन्थ कर्म, ज्ञान, भक्ति, ईश्वर, जीवात्मा तथा मोक्ष जैसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक विषयों का समन्वित विवेचन प्रस्तुत करता है। वेदान्त की विभिन्न परम्पराओं में गीता की व्याख्या अपने-अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार की गई है। विशिष्टाद्वैत वेदान्त के प्रमुख आचार्य श्रीरामानुजाचार्य ने अपने गीताभाष्य में परमात्मा की सर्वोच्चता, जीवात्मा की वास्तविकता तथा परमात्मा पर उसकी निर्भरता का प्रतिपादन करते हुए भक्तियोग को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। उनके अनुसार भक्ति केवल भावनात्मक अनुराग नहीं, बल्कि परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान, प्रेमपूर्ण उपासना तथा निरन्तर ईश्वरचिन्तन से सम्बद्ध एक आध्यात्मिक साधना है। प्रस्तुत शोधलेख में श्रीमद्भगवद्गीता के प्रमुख श्लोकों के आधार पर रामानुजीय भक्तिदर्शन के दार्शनिक आधार, कर्मयोग एवं ज्ञानयोग से उसके सम्बन्ध, प्रपत्ति की अवधारणा तथा मोक्ष के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, इस दर्शन की नैतिक एवं समकालीन प्रासंगिकता को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द: श्रीमद्भगवद्गीता, रामानुजाचार्य, विशिष्टाद्वैत वेदान्त, भक्तियोग, प्रपत्ति, जीवात्मा, परमात्मा, मोक्ष।

भारतीय दर्शन का मूल प्रयोजन केवल तत्त्वों का सैद्धान्तिक विवेचन करना नहीं, अपितु मानव जीवन को अज्ञान, दुःख तथा बन्धन से मुक्त करने का मार्ग प्रशस्त करना भी है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में धर्म, कर्म, ज्ञान, उपासना और मोक्ष के प्रश्नों पर व्यापक चिन्तन हुआ है। वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता इस चिन्तन के प्रमुख आधारग्रन्थ हैं। इनमें श्रीमद्भगवद्गीता विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें जीवन की व्यावहारिक समस्याओं तथा आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समन्वित निरूपण प्राप्त होता है। महाभारत के भीष्मपर्व में समाविष्ट गीता का उपदेश अर्जुन के नैतिक संकट से आरम्भ होता है और क्रमशः आत्मस्वरूप, कर्तव्य, प्रकृति, ईश्वर, कर्म, ज्ञान, भक्ति तथा मोक्ष जैसे गम्भीर विषयों तक विस्तृत होता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्तव्यपालन के लिए प्रेरित करते हुए जीवन के व्यापक आध्यात्मिक प्रयोजन का भी निरूपण करते हैं। इस प्रकार गीता का उपदेश केवल युद्धभूमि तक सीमित न रहकर मानव जीवन की अनेक समस्याओं के समाधान का आधार बनता है।

गीता की व्याख्या करने वाले प्रमुख वेदान्ताचार्यों में आदि शंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य तथा श्रीमध्वाचार्य का विशेष स्थान है। इन आचार्यों ने ब्रह्म, जीव, जगत् और मोक्ष के सम्बन्ध में अपने-अपने सिद्धान्तों के आधार पर गीता के तात्पर्य का विवेचन किया। इनमें रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत वेदान्त ब्रह्म की परम सत्ता को स्वीकार करते हुए जीव तथा जगत् की वास्तविकता को प्रतिष्ठित करता है।

रामानुजाचार्य ने अपने गीताभाष्य में परमात्मा के प्रति जीवात्मा की आश्रितता, भक्ति की साधना तथा ईश्वरप्राप्ति के स्वरूप का विशद विवेचन किया है। उनके दर्शन में जीवात्मा का आध्यात्मिक उत्कर्ष परमात्मा के यथार्थ ज्ञान, प्रेमपूर्ण उपासना तथा उनकी कृपा से सम्बद्ध है। अतः रामानुजीय भक्तिदर्शन का अध्ययन गीता के आध्यात्मिक सन्देश को विशिष्टाद्वैत की दार्शनिक पृष्ठभूमि में समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

विषयप्रवेश:
श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग का विभिन्न प्रसंगों में विवेचन हुआ है। इन साधनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध तथा परमात्मप्राप्ति में उनकी भूमिका को समझना महत्त्वपूर्ण दार्शनिक प्रश्न है। आचार्य रामानुज इन साधनाओं की व्याख्या किस प्रकार करते हैं? उनके दर्शन में जीवात्मा की वास्तविकता, परमात्मा पर उसकी निर्भरता, भक्तियोग की विशिष्टता तथा प्रपत्ति का स्थान क्या है? प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं प्रश्नों के समाधान का प्रयास करता है।

उद्देश्य
1. श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित भक्तियोग के स्वरूप का विवेचन करना।

2. विशिष्टाद्वैत वेदान्त के प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करना।
3. रामानुजीय व्याख्या में कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग के सम्बन्ध का विश्लेषण करना।
4. जीवात्मा और परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध को समझना।
5. प्रपत्ति तथा मोक्ष के विषय में रामानुजाचार्य की दृष्टि का अनुशीलन करना।
6. रामानुजीय भक्तिदर्शन की नैतिक एवं समकालीन प्रासंगिकता का विवेचन करना।

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः ग्रन्थाधारित, विश्लेषणात्मक तथा व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें श्रीमद्भगवद्गीता के मूल श्लोकों, श्रीरामानुजाचार्यकृत गीताभाष्य, श्रीभाष्य तथा वेदार्थसंग्रह के आधार पर विषय का विवेचन किया गया है। जहाँ आवश्यक है, वहाँ श्रीवैष्णव परम्परा में विकसित प्रपत्ति-सिद्धान्त के आलोक में भी विचार किया गया है।

विशिष्टाद्वैत वेदान्त का दार्शनिक आधार

श्रीरामानुजाचार्य भारतीय वेदान्त परम्परा के प्रमुख दार्शनिक तथा श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण आचार्य हैं। उनके दर्शन का व्यवस्थित निरूपण श्रीभाष्य, गीताभाष्य तथा वेदार्थसंग्रह जैसे ग्रन्थों में प्राप्त होता है। उन्होंने उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों तथा भगवद्गीता के आधार पर ब्रह्म, जीव और जगत् के सम्बन्ध का विशिष्ट प्रतिपादन किया।

विशिष्टाद्वैत का सामान्य अर्थ है—विशेषणों से विशिष्ट अद्वैत। इस दर्शन में परमब्रह्म की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार की जाती है, किन्तु जीवात्मा तथा जगत् की वास्तविकता का निषेध नहीं किया जाता। परमात्मा, जीव और जगत् के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए शरीर-शरीरी भाव की अवधारणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

रामानुजीय दर्शन के अनुसार चित् अर्थात् चेतन जीव तथा अचित् अर्थात् जड़ प्रकृति परमात्मा के शरीर के समान हैं और परमात्मा उनके अन्तर्यामी, नियन्ता तथा आधार हैं। यहाँ शरीर का अर्थ केवल स्थूल भौतिक शरीर नहीं, बल्कि ऐसी आश्रित सत्ता से है जिसका अस्तित्व और संचालन अपने अन्तर्यामी पर निर्भर करता है। इस प्रकार जीव तथा जगत् वास्तविक हैं, किन्तु उनकी सत्ता परमात्मा से निरपेक्ष नहीं है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

— श्रीमद्भगवद्गीता, 15.7

इस श्लोक में जीव को भगवान् का सनातन अंश कहा गया है। रामानुजीय दृष्टि में जीव के अंशत्व को परमात्मा के साथ उसके आश्रित सम्बन्ध के सन्दर्भ में समझना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि जीव परमात्मा के समान सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा स्वतन्त्र हो जाता है। जीव की सत्ता वास्तविक है, किन्तु उसका अस्तित्व परमात्मा पर आश्रित है।

इस प्रकार विशिष्टाद्वैत वेदान्त जीव की वास्तविकता तथा परमात्मा की सर्वोच्चता दोनों को सुरक्षित रखता है। यही दार्शनिक आधार जीव और ईश्वर के मध्य प्रेम, उपासना, सेवा तथा शरणागति के सम्बन्ध को समझने में सहायता करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग का स्वरूप

गीता में भक्ति का विवेचन विशेष रूप से सातवें, नौवें, बारहवें तथा अठारहवें अध्याय में प्राप्त होता है। यहाँ भक्ति का अर्थ केवल भावनात्मक अनुराग नहीं है, बल्कि परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान, उनके प्रति प्रेम, निरन्तर स्मरण तथा उपासना से सम्बद्ध आध्यात्मिक साधना है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

— श्रीमद्भगवद्गीता, 9.34

इस श्लोक में मन को भगवान् में लगाने, उनका भक्त बनने, उनकी उपासना करने तथा उन्हें नमस्कार करने का निर्देश दिया गया है। इसमें भक्ति के चार प्रमुख पक्ष दिखाई देते हैं—मानसिक एकाग्रता, प्रेमपूर्ण निष्ठा, उपासना तथा विनयपूर्ण समर्पण।

रामानुजीय भक्तिदर्शन में परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान और उनके प्रति अनन्य प्रेम का विशेष महत्त्व है। साधक जब परमात्मा के अनन्त कल्याणगुणों तथा अपने आश्रित स्वरूप का बोध प्राप्त करता है, तब उसकी उपासना केवल बाह्य कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सम्पूर्ण जीवन को ईश्वराभिमुख बनाने वाली साधना बन जाती है।

भक्ति की नैतिक अभिव्यक्ति का वर्णन गीता के बारहवें अध्याय में भी प्राप्त होता है। भगवान् कहते हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥

श्रीमद्भगवद्गीता, 12.13

इस श्लोक में द्वेषरहितता, मैत्री, करुणा, ममतारहितता, अहंकार का अभाव तथा क्षमा जैसे गुणों का वर्णन है। इससे स्पष्ट होता है कि भक्ति का सम्बन्ध केवल व्यक्तिगत उपासना से नहीं, बल्कि साधक के आचरण और चरित्र से भी है।

रामानुजीय भक्तिदर्शन की दृष्टि से ईश्वरनिष्ठा का वास्तविक महत्त्व तभी प्रकट होता है, जब वह मनुष्य के व्यवहार में करुणा, विनम्रता, क्षमा तथा उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करे। इस प्रकार भक्ति आध्यात्मिक साधना होने के साथ-साथ नैतिक जीवन का भी आधार बनती है।

रामानुजाचार्य के अनुसार भक्तियोग

रामानुजाचार्य के दर्शन में भक्तियोग परमात्मा की प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है। उनके अनुसार भक्ति का विकास परमात्मा के स्वरूप, स्वभाव तथा कल्याणगुणों के यथार्थ ज्ञान से सम्बद्ध है। यह ज्ञान साधक के भीतर प्रेम, श्रद्धा तथा निरन्तर उपासना की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है।

रामानुजाचार्य की व्याख्या में भक्ति को सामान्य भावनात्मक अनुभूति के रूप में सीमित नहीं किया जा सकता। यह ईश्वर के प्रति गहन अनुराग और निरन्तर ध्यान से सम्बद्ध व्यवस्थित साधना है। साधक अपने जीवन को परमात्मा की आराधना के रूप में देखता है और अपनी साधना में ईश्वरकृपा को महत्त्व देता है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

श्रीमद्भगवद्गीता, 9.22

इस श्लोक में अनन्यभाव से भगवान् का चिन्तन और उपासना करने वाले भक्तों के प्रति उनकी कृपा का प्रतिपादन किया गया है। रामानुजीय दृष्टि में यह श्लोक परमात्मा तथा भक्त के आत्मीय सम्बन्ध को व्यक्त करता है। भक्त अपनी साधना में प्रयत्नशील रहता है, किन्तु परमात्मा की कृपा को भी परम महत्त्व देता है।

यहाँ अनन्यता का आशय परमात्मा के प्रति दृढ़ निष्ठा और उपासना की एकाग्रता से है। जब साधक परमात्मा को अपना परम आश्रय स्वीकार करता है, तब उसके जीवन में आध्यात्मिक स्थिरता उत्पन्न होती है।

भक्तियोग का उद्देश्य केवल मानसिक शान्ति प्राप्त करना नहीं, बल्कि परमात्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके उनकी उपासना करना और अन्ततः उनकी प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होना है। इस प्रकार रामानुजीय दर्शन में ज्ञान तथा भक्ति परस्पर सम्बद्ध हैं।

कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का पारस्परिक सम्बन्ध

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म, ज्ञान तथा भक्ति का विवेचन विभिन्न प्रसंगों में हुआ है। इनका सम्बन्ध समझने के लिए आचार्य रामानुज के दार्शनिक दृष्टिकोण पर ध्यान देना आवश्यक है।

1 कर्मयोग

कर्मयोग का मूल तत्त्व कर्तव्यपालन, फलासक्ति का त्याग तथा ईश्वरनिष्ठा है। मनुष्य को अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए कर्मफल के प्रति अनावश्यक आसक्ति से बचना चाहिए।

गीता में कहा गया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

श्रीमद्भगवद्गीता, 2.47

इस श्लोक में कर्म करने के अधिकार तथा फलासक्ति से बचने का उपदेश दिया गया है। इसका आशय कर्म का परित्याग करना नहीं, बल्कि कर्म के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करना है।

रामानुजीय विचार के सन्दर्भ में कर्मयोग को आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में समझा जा सकता है। निष्काम भाव से कर्तव्यपालन करने वाला साधक अपने कर्मों को ईश्वरार्पण की भावना से सम्पन्न करता है। इससे उसके जीवन में संयम, उत्तरदायित्व तथा ईश्वरनिष्ठा विकसित होती है।

2 ज्ञानयोग
ज्ञानयोग में आत्मस्वरूप, प्रकृति, कर्म तथा परमात्मा के सम्बन्ध का विवेचन प्रमुख है। रामानुजीय दर्शन में ज्ञान का अर्थ जीव और परमात्मा के सम्बन्ध का यथार्थ बोध प्राप्त करना है। जीवात्मा चेतन सत्ता है और परमात्मा पर आश्रित है। इस सम्बन्ध का ज्ञान साधक को अहंकारपूर्ण स्वतन्त्रता की धारणा से दूर ले जाता है।

रामानुजाचार्य के अनुसार तत्त्वज्ञान भक्ति की साधना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परमात्मा के स्वरूप और गुणों का यथार्थ ज्ञान साधक में श्रद्धा, प्रेम तथा उपासना की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है।

3 भक्तियोग
भक्तियोग में परमात्मा के प्रति प्रेमपूर्ण तथा निरन्तर उपासना का विशेष महत्त्व है। कर्मयोग कर्तव्यपालन और फलासक्ति के त्याग का अनुशासन प्रदान करता है, जबकि ज्ञानयोग आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध का बोध कराता है। भक्तियोग इस तत्त्वबोध को परमात्मा के प्रति अनन्य अनुराग और उपासना के रूप में विकसित करता है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि रामानुजीय दर्शन में भक्तियोग को कर्म और ज्ञान का केवल यान्त्रिक योग नहीं माना जा सकता। इसकी अपनी विशिष्ट आध्यात्मिक प्रकृति है। कर्मयोग तथा ज्ञानयोग भक्ति की साधना में सहायक होते हैं, जबकि भक्तियोग परमात्मा के प्रति प्रेमपूर्ण उपासना का विशिष्ट मार्ग है।

अतः गीता में इन साधनाओं का सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पक्षों को एक व्यापक आध्यात्मिक लक्ष्य से जोड़ने में निहित है।

प्रपत्ति अथवा शरणागति का स्वरूप
रामानुजीय भक्तिदर्शन तथा व्यापक श्रीवैष्णव परम्परा में प्रपत्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रपत्ति का सामान्य अर्थ है—परमात्मा की शरण ग्रहण करना। इसमें साधक परमात्मा को अपना परम आश्रय स्वीकार करता है और उनकी कृपा पर विश्वास रखता है। शरणागति का अर्थ कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों से पलायन नहीं है। इसका आशय अहंकारपूर्ण आत्मनिर्भरता का त्याग करके परमात्मा के प्रति विश्वास, निष्ठा तथा समर्पण विकसित करना है।

गीता के अठारहवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

श्रीमद्भगवद्गीता, 18.66

यह श्लोक शरणागति के विवेचन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भगवान् अर्जुन को अपनी शरण ग्रहण करने का उपदेश देते हुए समस्त पापों से मुक्त करने का आश्वासन प्रदान करते हैं।

रामानुजाचार्य के गीताभाष्य में इस श्लोक की व्याख्या विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। वे कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग का उल्लेख करते हुए कर्तृत्वाभिमान, ममता और फलासक्ति के परित्याग पर बल देते हैं। उनके अनुसार साधक को भगवान् को कर्ता, आराध्य, प्राप्तव्य तथा उपाय के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इस व्याख्या में सभी भक्ति-सम्बन्धी कर्तव्यों का परित्याग अभिप्रेत नहीं है, बल्कि अहंकार तथा फलासक्ति का त्याग महत्त्वपूर्ण है।

इसलिए गीता 18.66 को रामानुजाचार्य की मूल व्याख्या के सन्दर्भ में समझना आवश्यक है। श्रीवैष्णव परम्परा में विकसित प्रपत्ति के सिद्धान्त तथा रामानुजाचार्य के गीताभाष्य में प्रस्तुत व्याख्या के बीच सम्बन्ध है, किन्तु दोनों को बिना भेद किए एक ही कथन के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा।

श्रीवैष्णव परम्परा में प्रपत्ति के छह अंगों का सामान्यतः उल्लेख किया जाता है—

1. **आनुकूल्यसङ्कल्प** — भगवान् के अनुकूल आचरण करने का संकल्प।
2. **प्रातिकूल्यवर्जन** — भगवान् के प्रतिकूल आचरण का परित्याग।
3. **रक्षिष्यतीति विश्वास** — परमात्मा अपनी रक्षा करेंगे, ऐसा विश्वास।
4. **गोप्तृत्ववरण** — परमात्मा को अपना रक्षक स्वीकार करना।
5. **कार्पण्य** — अपनी सीमाओं तथा असमर्थता का विनम्र बोध।
6. **आत्मनिक्षेप** — अपने आपको परमात्मा के प्रति समर्पित करना।

ये छह अंग श्रीवैष्णव शरणागति-परम्परा के सुव्यवस्थित सिद्धान्त का निरूपण करते हैं। इनके माध्यम से शरणागति की आन्तरिक भावना, आचरण तथा आध्यात्मिक प्रयोजन को समझा जा सकता है।

प्रपत्ति का व्यावहारिक पक्ष भी महत्त्वपूर्ण है। यह मनुष्य को विनम्रता, धैर्य तथा विश्वास की प्रेरणा देती है। कठिन परिस्थितियों में शरणागति का आशय निष्क्रिय हो जाना नहीं, बल्कि परमात्मा पर विश्वास रखते हुए विवेकपूर्ण प्रयत्न करते रहना है।

रामानुजीय दर्शन में मोक्ष की अवधारणा

भारतीय दर्शन में मोक्ष का सामान्य अर्थ जन्म-मरण के बन्धन तथा दुःख से मुक्ति है। विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं में मोक्ष के स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद हैं। रामानुजीय दर्शन में मोक्ष जीवात्मा की वास्तविक सत्ता, परमात्मा के प्रति उसकी आश्रितता तथा परमात्मप्राप्ति से सम्बद्ध है।

रामानुजाचार्य के अनुसार जीवात्मा वास्तविक चेतन सत्ता है। मोक्ष की अवस्था में जीव की सत्ता का निषेध नहीं होता, बल्कि वह कर्मबन्धन से मुक्त होकर परमात्मा की प्राप्ति तथा उनकी सेवा में आनन्द प्राप्त करता है। जीव परमात्मा के समान स्वतन्त्र या सर्वशक्तिमान् नहीं बनता। उसकी आध्यात्मिक पूर्णता परमात्मा के प्रति अपने शाश्वत आश्रित सम्बन्ध को पहचानने में निहित है।

गीता में भगवान् कहते हैं—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

— श्रीमद्भगवद्गीता, 18.55

इस श्लोक में भक्ति के माध्यम से परमात्मा को तत्त्वतः जानने तथा उसके अनन्तर उनकी प्राप्ति का प्रतिपादन हुआ है। रामानुजाचार्य इस प्रसंग में भगवान् के स्वरूप, स्वभाव, गुण तथा विभूतियों के यथार्थ ज्ञान को महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार ऐसा तत्त्वज्ञान भक्ति के साथ सम्बद्ध है और परमात्मप्राप्ति की दिशा में अग्रसर करता है।

रामानुजीय दर्शन में मोक्ष केवल दुःख की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि परमात्मा की प्राप्ति, दिव्य आनन्द तथा उनकी सेवा से सम्बद्ध आध्यात्मिक अवस्था है। जीवात्मा का परम प्रयोजन अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना तथा परमात्मा के प्रति अपने शेषत्व को स्वीकार करना है।

इस प्रकार भक्ति जीवात्मा को परमात्मा के प्रति उन्मुख करती है और मोक्ष उसके आध्यात्मिक प्रयोजन की पूर्णता को व्यक्त करता है। इस दृष्टि से रामानुजीय मोक्ष-सिद्धान्त में जीव की वास्तविकता तथा परमात्मा की सर्वोच्चता दोनों का समन्वय दिखाई देता है।

रामानुजीय भक्तिदर्शन की नैतिक एवं सामाजिक प्रासंगिकता

रामानुजाचार्य का भक्तिदर्शन केवल दार्शनिक चिन्तन अथवा व्यक्तिगत उपासना की पद्धति तक सीमित नहीं है। इसमें नैतिक जीवन, कर्तव्यपालन, करुणा, विनम्रता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए भी महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ निहित हैं।

प्रथम, भक्ति मनुष्य में अहंकार के स्थान पर विनम्रता का विकास करती है। जब व्यक्ति स्वयं को परमात्मा पर आश्रित मानता है, तब उसमें अपनी सीमाओं को स्वीकार करने तथा दूसरों के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार करने की प्रवृत्ति विकसित हो सकती है।

द्वितीय, भक्तिदर्शन करुणा और मैत्री की भावना को प्रोत्साहित करता है। गीता में वर्णित अद्वेष, क्षमा और समत्व जैसे गुण भक्त के आचरण से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार भक्ति का मूल्यांकन केवल पूजा, जप या अनुष्ठान की मात्रा से नहीं, बल्कि उसके नैतिक परिणामों से भी किया जा सकता है।

तृतीय, जीव तथा जगत् की वास्तविकता को स्वीकार करने वाला विशिष्टाद्वैत दर्शन जीवन के प्रति उत्तरदायी दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक हो सकता है। परमात्मा के प्रति निष्ठा का अर्थ जीवों के प्रति अन्याय, हिंसा तथा घृणा को प्रोत्साहित करना नहीं, बल्कि अपने आचरण को नैतिकता और करुणा से युक्त बनाना है।

चतुर्थ, कर्मयोग तथा भक्तियोग का सम्बन्ध यह शिक्षा देता है कि आध्यात्मिकता का अर्थ संसार से पलायन नहीं है। मनुष्य अपने पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी ईश्वरनिष्ठ जीवन जी सकता है।

पञ्चम, प्रपत्ति की भावना व्यक्ति को संकटों के समय धैर्य तथा आशा प्रदान कर सकती है। शरणागति का आशय कठिनाइयों के सामने निष्क्रिय हो जाना नहीं, बल्कि परमात्मा के प्रति विश्वास रखते हुए विवेकपूर्ण प्रयत्न करते रहना है।

समकालीन समाज में मानसिक तनाव, नैतिक संकट तथा सामाजिक संघर्षों के बीच गीता का कर्तव्यनिष्ठा, समत्व तथा करुणा से सम्बद्ध उपदेश उपयोगी हो सकता है। रामानुजीय भक्तिदर्शन इन मूल्यों को जीव और परमात्मा के सम्बन्ध की दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

अतः इस दर्शन का अध्ययन धार्मिक साधना के साथ-साथ नैतिक जीवन, सामाजिक सद्भाव तथा उत्तरदायी आचरण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता की रामानुजीय व्याख्या में भक्ति एक व्यापक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक साधना के रूप में प्रतिष्ठित है। आचार्य रामानुज ने विशिष्टाद्वैत वेदान्त के आधार पर जीव, जगत् तथा परमात्मा के सम्बन्ध का प्रतिपादन करते हुए परमात्मा की सर्वोच्चता तथा जीवात्मा की वास्तविकता दोनों को महत्त्व प्रदान किया।

रामानुजीय दर्शन में परमात्मा समस्त जगत् के आधार, नियन्ता तथा अन्तर्यामी हैं। जीवात्मा वास्तविक चेतन सत्ता है, किन्तु उसका अस्तित्व परमात्मा पर आश्रित है। इस आश्रित सम्बन्ध का ज्ञान जीव में परमात्मा के प्रति श्रद्धा, प्रेम तथा समर्पण की भावना विकसित करता है। इस प्रकार तत्त्वज्ञान और भक्ति परस्पर सम्बद्ध हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिक साधना जीवन के विभिन्न पक्षों को एक व्यापक लक्ष्य से जोड़ती है। कर्मयोग कर्तव्यनिष्ठा तथा फलासक्ति के त्याग का मार्ग प्रशस्त करता है, ज्ञानयोग तत्त्वों के यथार्थ बोध में सहायता करता है और भक्तियोग साधक की चेतना को परमात्मा के प्रति अनन्य रूप से उन्मुख करता है।

प्रपत्ति की अवधारणा भक्तिपरक दृष्टिकोण को और अधिक गम्भीरता प्रदान करती है। शरणागति के माध्यम से साधक परमात्मा को अपना परम आश्रय स्वीकार करता है तथा अहंकारपूर्ण स्वतन्त्रता के स्थान पर विश्वास, विनम्रता और समर्पण को महत्त्व देता है। रामानुजाचार्य के गीताभाष्य में गीता 18.66 की व्याख्या करते समय कर्तृत्वाभिमान तथा फलासक्ति के त्याग पर दिया गया बल इस सन्दर्भ में विशेष महत्त्व रखता है।

मोक्ष के सम्बन्ध में रामानुजीय दर्शन जीवात्मा की वास्तविकता तथा परमात्मा के साथ उसके शाश्वत आश्रित सम्बन्ध को स्वीकार करता है। मोक्ष का अर्थ जीव की सत्ता का निषेध नहीं, बल्कि बन्धन से मुक्ति, परमात्मप्राप्ति तथा उनकी सेवा से सम्बद्ध आध्यात्मिक पूर्णता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता की दृष्टि से रामानुजीय भक्तिदर्शन ज्ञान, कर्म, भक्ति, शरणागति तथा मोक्ष के सम्बन्ध का महत्त्वपूर्ण दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करता है। यह दर्शन मनुष्य को तत्त्वज्ञान के साथ नैतिक आचरण, कर्तव्यपालन, करुणा, विनम्रता तथा परमात्मा के प्रति निष्ठा की प्रेरणा देता है। इस दृष्टि से रामानुजीय भक्तिदर्शन का अध्ययन भारतीय वेदान्त की दार्शनिक परम्परा को समझने के साथ-साथ समकालीन जीवन में आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता को स्पष्ट करने में भी सहायक है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. वेदव्यास। *श्रीमद्भगवद्गीता*। संस्कृत मूल पाठ का मानक संस्करण।
2. रामानुजाचार्य। *श्रीमद्भगवद्गीताभाष्यम्*। संस्कृत मूल पाठ का प्रामाणिक संस्करण।
3. रामानुजाचार्य। *श्रीभाष्यम्*। ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य।
4. रामानुजाचार्य। *वेदार्थसंग्रहः*।
5. *छान्दोग्योपनिषद्*। प्रासंगिक मन्त्र एवं भाष्य।
6. *बृहदारण्यकोपनिषद्*। प्रासंगिक मन्त्र एवं भाष्य।
7. *तैत्तिरीयोपनिषद्*। प्रासंगिक मन्त्र एवं भाष्य।
8. श्रीवैष्णव परम्परा के प्रामाणिक ग्रन्थ—प्रपत्ति, शरणागति तथा भक्तियोग से सम्बन्धित प्रासंगिक विवेचन।